जंक्शन

गजानन माधव मुक्तिबोध

जंक्शन

रेलवे स्टेशन, लंबा और सूना! कड़ाके की सर्दी! मैं ओवरकोट पहने हुए इत्मीनान से सिगरेट पीता हुआ घूम रहा हूँ।

https://www.hindiadda.com/junction/

मुझे इस स्टेशन पर अभी पाँच घंटे रुकना है। गाड़ी रात के साढ़े बारह बजे आएगी।

रुकना, रुकना, रुकना! रुकते-रुकते चलना! अजीब मनहूसियत है!

प्लेटफॉर्म के पास से गुजरनेवाली लोहे की पटरियाँ सूनी हैं। शंटिंग भी नहीं है। पटरियों के उस पार, थोड़ी ही दूरी पर रेलवे का अहाता है, अहाता के उस पार सड़क है! शाम को छह बजे ही सड़क पर और उससे लगे हुए नए मकानों में बिजलियाँ झिलमिलाने लगी हैं!

उदास और मटमैली शाम! एक बार टी-स्टॉल पर चाय पी आया हूँ। फिर कहाँ जाऊँ! शहर में जा कर भोजन कर आऊँ? लेकिन यहाँ सामान कौन देखेगा। आस-पास बैठे हुए मुसाफिर फटी चादरों और धोतियों को ओढ़े हुए, सिमटे-सिमटे, ठिठुरे-ठिठुरे चुपचाप बैठे हैं। इनके भरोसे सामान कैसे लगाया जाए! कोई भी उसमें से कुछ उठा कर चंपत हो सकता है।

टी-स्टॉल की तरफ नजर डालता हूँ। इक्के-दुक्के मुसाफिर घुटने छाती से चिपकाए बैठे हुए दिखाई दे रहे हैं। गरम ओवरकोट पहन कर चलनेवाला सिर्फ मैं हूँ, मैं।

अगर कोई भी मुझे उस वक्त देखता तो पाता कि मैं कितने इत्मीनान और आत्म-विश्वास के साथ कदम बढ़ा रहा हूँ। इतनी शान मुझे पहले कभी महसूस नहीं हुई थी। यह बात अलग है कि गरम ओवरकोट उधार लिया हुआ है। राजनाँदगाँव से जबलपुर जाते समय एक मित्र ने कृपापूर्वक उसे प्रदान किया था। इसमें संदेह नहीं कि समाज में अगर अच्छे आदमी न रहें, तो वह एक क्षण न चले।

सिगरेट पीते हुए मैं मुसाफिरखाने की तरफ देखता हूँ। वहाँ आदमी नहीं, आदमीनुमा गंदा सामान इधर-उधर बिखेर दिया गया है। उनकी तुलना में सचमुच मैं कितना शानदार हूँ।

अनजाने ही मैं अकड़ कर चलने लगता हूँ; और किसी को ताव बताने की, किसी पर रौब झाड़ने की तबीयत होती हैं इन सब टूटे हुए अक्षर (प्रेस टाइप) - जैसे लोगों के बीच गुजर कर अपने को काफी ऊँचा और प्रभावशाली समझने लगता हूँ। सच कहता हूँ, इस समय मेरे पास पैसे भी हैं। अगर कोई भिखारी इस समय आता तो मैं अवश्य ही उसे कुछ प्रदान करता। लेकिन भिखारी बेवकूफ थोड़े ही था, जो वहाँ आए; वहाँ तो सभी लगभग भिखारी थे।

सोचा कि ट्रंक खोल कर सामान निकाल कर कुछ जरूरी चिट्ठियाँ लिख डालूँ। मैंने एक सम्माननीय नेता को इसी प्रकार समय सदुपयोग करते हुए देखा था। अभी उजाला काफी था। दो-चार चिट्ठियाँ रगड़ी जा सकती थीं। ट्रंक के पास मैं गया भी। उसे खोल भी दिया। लेकिन कलम उठाने के बजाय, मैंने पीतल का एक डिब्बा उठा लिया। ढक्कन खोल कर मैंने उसमें से एक 'गाकर लड्डू' निकाला और मुँह में भर लिया। बहुत स्वादिष्ट था वह। उसमें गुड़ और डालडा घी मिला हुआ था। इसी बीच मुझे घर के बच्चों की याद आई। और मैंने दूसरा लड्डू मुँह में डालने की प्रवृत्ति पर पाबंदी लगा दी।

तभी मुझे गांधीजी की याद आई। क्या सिखाया उन्होंने? पर दु:ख कातरता। इंद्रिय-संयम। यह मैं क्या कर रहा हूँ। यद्यपि लड्डू मेरे ही लिए दिए गए हैं और मैं पूर्णतया उन्हें खाने का नैतिक अधिकार भी रखता हूँ। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि बच्चों को सिर्फ आधा-आधा ही दिया गया है। फिर मैं तो एक खा चुका हूँ।

पानी पीने के लिए निकालता हूँ। मुसाफिर वैसे ही ठिठुरे-ठिठुरे, सिमटे-सिमटे बैठे हैं। उनके पास गरम कोट तो क्या, साधारण कपड़े भी नहीं हैं। उनमें से कुछ बीड़ी पी रहे हैं। किसी के पास गरम कोट नहीं है, सिवा मेरे। मैं अकड़ता हुआ स्टॉल पर पानी की तलाश में जाता हूँ।

मैं पूर्ण आत्म-संतोष का आनंद-लाभ करता हुआ वापस लौटता हूँ कि अब इस कार्यक्रम के बाद कौन-सा महान कार्य करूँ।

दूर से देखता हूँ कि सामान सुरक्षित है। शाम डूब रही है। अँधेरा छा गया है। अभी कम से कम चार घंटे यहीं पड़े रहना है। एक पोर्टर से बात करते हुए कुछ समय और गुजार देता हूँ।

और फिर होल्डाल निकाल कर बिस्तर बिछा देता हूँ। सुंदर, गुलाबी अलवान और खुशनुमा कंबल निकल पड़ता है। मैं अपने को वाकई भला आदमी समझने लगता हूँ। यद्यपि यह सच है कि दोनों चीजों में से एक भी मेरी अपनी नहीं है।

ओवरकोट समेत मैं बिस्तर पर ढेर हो जाता हूँ। टूटी हुई चप्पलें बिस्तर के नीचे सिर के पास इस तरह जमा कर देता हूँ कि मानो वह धन हो। धन तो वह हई है। कोई उसे मार ले तो! तब पता चलेगा!

गुलाबी अलवान ओढ़ कर पड़ रहता हूँ। अभी तक स्टेशन पर कपड़ों के मामले में मुझे चुनौती देनेवाला कोई नहीं आया (शायद यह इलाका बहुत गरीब हैं)। कहीं भी, एक भी खुशहाल, सुंदर, परिपुष्ट आकृति नहीं दिखाई दी।

कैसा मनहूस प्लेटफॉर्म है?

मेरे बिस्तर के पास एक सीमेंट की बेंच है। वहाँ गठरियाँ रखी हुई हैं। सोचता हूँ, उस पर अपना ट्रंक क्यों न रख दूँ। गठरियाँ नीचे भी डल सकती हैं। ट्रंक उनसे उम्दा चीज है; उसे साफ-सुथरी बेंच पर होना चाहिए।

लेकिन उठने की हिम्मत नहीं होती। कड़ाके का जाड़ा है। अलवान के बाहर मुँह निकालने की तबीयत नहीं हो रही हैं। लेकिन नींद भी तो आँखों से दूर है।

विचित्र समस्या है। खुद ही अकेले में, अपने को अकेले ही शानदार समझते रहो। इसमें क्या धरा है। शान का संबंध अपने से ज्यादा दूसरों से है। यह अब मालूम हुआ। लेकिन किस मुश्किल में।

उसी बीच एकाएक न मालूम कहाँ से चार फीट का एक गोरा चिट्ठा लड़का सामने आ जाता है। वह टेरोलिन का कुरता पहने हुए है। खाकी चड्ढी है। चेहरा लगभग गोल है। गोरे चेहरे पर भौंओं की धुँधली लकीर दिखाई देती है। या उनका रंग भी गोरा है।

वह सामने खड़े-ही-खड़े एक चमड़े के छोटे-से बैग की ओर इशारा करते हुए कहता है, 'सा'ब, जरा ध्यान रखिएगा। मैं अभी आया।' एकाएक इस तरह किसी का आ कर कुछ कहना मुझे अच्छा लगा! उसकी आवाज कमजोर है। लेकिन उस आवाज में भले घर की झलक है। उसके साफ-सुथरे कपड़ों से भी यही बात झलकती है।

मैं 'हाँ' कह ही रहा था कि उसके पहले लड़का चला गया। मैं उसके बारे में सोचता रहा, न जाने क्या।

आधे घंटे बाद वह फिर आया। और चुपचाप चमड़े के बैग के पास जा कर बैठ गया। सर्दी के मारे उसने अपनी हथेलियाँ खाकी चड्ढी की जेब में डाल रखी थीं। मैंने गुलाबी अलवान के नीचे से मुँह उठा कर उसे देखा।

भले ही वह टेरीलीन का बुश्शर्ट पहने हो, वह खूब ठिठुर रहा था। बुश्शर्ट के नीचे एक अंडरवीयर था। बस! उसके पास ओढ़ने-बिछाने के भी कपड़े नहीं थे।

कुछ कुतूहल और कुछ चिंता से मैंने पूछा, 'तुम ओढ़ने के कपड़े ले कर क्यों नहीं आए। कितना जाड़ा है। ऐसे कैसे निकल आए।'

उसने जो उत्तर दिया उसका आशय यह था कि यहाँ से करीब पचास मील दूर शहर बालाघाट में एक बारात उतरी थी। उसमें वह, उसके घरवाले और दूसरे रिश्तेदार भी थे। एक रिश्तेदार वहाँ से आज ही नागपुर चल दिया, लेकिन अपना चमड़े का बैग भूल गया। चूँकि वहाँवालों को मालूम था कि गाड़ी नागपुरवाली उस स्टेशन से बहुत देर से छूटती है, इसलिए उन्होंने इस लड़के के साथ यह बैग भेज दिया।

लेकिन अब यह लड़का कह रहा है कि रिश्तेदार कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं। वह दो बार प्लेटफॉर्म के चक्कर काट आया है। शायद वे संबंधी महोदय बस से नागपुर रवाना हो गए। और अब चमड़े का बैग सँभाले हुए यह लड़का सर्दी में ठिठुरता हुआ यहाँ बैठा है। वह भी मेरी साढ़े बारह बजेवाली गाड़ी से बालाघाट पहुँच जाएगा। यह गाड़ी वहाँ रात के डेढ़ बजे पहुँचती है।

कड़ाके का जाड़ा और रात के डेढ़। मैंने कल्पना की कि इसकी माँ फूहड़ है, या वह उसकी सौतेली माँ है। आखिर उसने क्या सोच कर अपने लड़के को इस भयानक सर्दी में, बिना किसी खास इंतजाम के एक जिम्मेदारी दे कर रवाना कर दिया।

मैंने फिर लड़के की तरफ देखा। वह मारे सर्दी के बुरी तरह ठिठुर रहा था। और मैं अपने अलवान और कंबल का गरम सुख प्राप्त करते हुए आनंद अनुभव कर रहा था।

मैं बिस्तर से उठ पड़ा। ट्रंक खोला। उसमें से डबलरोटी के दो टुकड़े निकाले। फिर सोचा, एक लड्डू भी निकाल लूँ। किंतु यह विचार आया की लड़का टेरीलीन का बुश्शर्ट पहने है। फिर लड्डू गुड़ के हैं। वह उसका अनादर कर सकता है।

उसके हाथ में डबलरोटी के दो टुकड़े और चायवाले से लिया हुआ एक चाय का कप देते हुए कहा, 'तुमने अभी तक कुछ नहीं खाया है। लो, इसे लो।'

'नहीं-नहीं, मैंने अभी भजिये खाए हैं।' और लड़के के नन्हे हाथों ने तुरंत ही लपक कर उसे ले लिया। उसको खाते-पीते देख कर मेरी आत्मा तृप्त हो रही थी।

मैंने पूछा, 'बालाघाट से कब चले थे?'

'तीन बजे।'

'तीन बजे से तुमने कुछ नहीं खाया?'

'नहीं तो, दो आने के भजिये खाए थे। चाय पी थी।'

मेरा ध्यान फिर उसके माता-पिता की ओर गया और मैं मन-ही-मन उन्हें गाली देने लगा।

मुझे नींद नहीं आ रही थी। मैंने लड़के से कहा, 'आओ, बिस्तर पर चले आओ। साढ़े दस बजे उठा दूँगा।'

लड़के ने तुरंत ही चमड़े के अपने कीमती जूते के बंद खोले, मोजे निकाले। सिरहाने रख दिया। और बिस्तर के भीतर पड़ गया।

मैं ट्रंक के पास बैठा हुआ था। लड़का मेरे बिस्तरे पर। मैं खुद जाड़े में। वह गरमी महसूस करता हुआ।

किंतु मेरा ध्यान उस लड़के की तरफ था। कितना भोला विश्वास है उसके चेहरे पर।

और मैं सोचने लगा कि मनुष्यता इसी भोले विश्वास पर चलती है। और इस भोले विश्वास के वातावरण में ही कपट और छल करने वाले पनपने हैं।

मेरे बदन पर ओवरकोट था, लेकिन अब वह कोई गरमी नहीं दे रहा था।

मैं फिर से टी-स्टॉल पर गया। फिर एक कप चाय पी और मनुष्य के भाग्य के बारे में सोचने लगा। मान लीजिए, इस लड़के के पिता ने दूसरी शादी कर ली है। इस लड़के की माँ मर गई है, और जो है, वह सौतेली है। अगर अभी से वह लड़के की इतनी उपेक्षा करती है तो हो चुकी अच्छी तालीम। क्या पता, इस लड़के का भाग्य क्या हो!

लड़के ने मेरी दी हुई हर चीच लपक कर ली थी। मुझ पर खूब गहरा विश्वास कर लिया था। क्या यह इसका सबूत नहीं है कि लड़के के दिल में कहीं कोई जगह है जो कुछ माँगती है, कुछ चाहती है। ईश्वर करे, उसका भविष्य अच्छा बने।

इन्ही खयालों में डूबता-उतराता मैं अपने बच्चों को देखने लगा जो घर में दरवाजे बंद करके भी तेज सर्दी महसूस कर रहे होंगे। उनके पास रजाई भी नहीं है। तरह-तरह के कपड़े जोड़-जाड़ कर जाड़ा निकालते हैं। इस समय, घर सूना होगा और वे मेरी याद करते बैठे होंगे। बच्चे! बच्चे और उनकी वह माँ, जो सिर्फ भात खा कर मोटी हुई जा रही है, लेकिन चेहरा पर पीलापन है।

मैंने बच्चों को सिखा दिया है कि बेटे कभी इच्छामय दृष्टि से दुनिया को मत देखना। वह मामूली इच्छा भी पूरी नहीं कर सकती। और चाहे जो करो, मौका पड़ने पर झूठ बोल सकते हो, लेकिन यह मत भूलना कि तुम्हारे गरीब माँ-बाप थे। तुम्हारी जन्मभूमि जमीन और धूर और पत्थर से बनी यह भारत की धरती ही नहीं है। वह है - गरीबी। तुम कटे-पिटे दागदार चेहरेवालों की संतान हो। उनसे द्रोह मत करो। अपने इन लोगों को मत त्यागना। प्रगतिवाद तो मैंने अपने घर से ही शुरू कर दिया था। मेरे बड़े बच्चे को यह कविता रटा दी थी -

जिंदगी की कोख में जन्मा

नया इस्पात

दिल के खून में रँग कर!

तुम्हारे शब्द मेरे शब्द

मानव-देह धारण कर

अरे चक्कर लगा घर-घर, सभी से कह रहे हैं

... सामना करना मुसीबत का,

बहुत तन कर

खुद को हाथ में रख कर।

उपेक्षित काल - पीड़ित सत्य-गो के यूथ

उदासी से भरे गंभीर

मटमैले गऊ चेहरे।

उन्हीं को देख कर जीना

कि करुणा करनी की माँ है।

बाकी सब कुहासा है, धुआँ-सा है।

लेकिन, यह थोड़े ही है कि लड़का मेरी बात मान ही जाएगा। मनुष्य में कैसे परिवर्तन होते हैं। संभव है, वह थानेदार बन जाए और डंडे चलाए। कौन जानता है।

मैं अपनी ही कविता का मजा लेता हुआ और भीतर झूमता हुआ वापस लौटता हूँ। उस वक्त सर्दी मुझे कम महसूस होने लगती है। बिस्तर के पास जा कर खड़ा हो जाता हूँ। और गुलाबी अलवान और नरम कंबल के नीचे सोए हुए उस बालक की शांति निद्रित मुद्रा को मग्न अवस्था में देखने लगता हूँ। और मेरे हृदय में प्रसन्न ज्योति जलने लगती है।

कि इसी बीच मुझे बैठ जाने की तबीयत होती है। पासवाली सीमेंट की बेंच पर जरा टिक जाता हूँ। और बाईं ओर रेलवे अहाते के पार देखने लगता हूँ।

बाईं ओर बेंच पर रखी गठरियों के पास बैठे हुए एक-दूसरी आकृति की ओर ध्यान जाता है।

हरी धारीवाला एक सफेद शर्ट पहने वह बालक है, जो घुटनों को छाती से चिपकाए बैठा है। बाँहों से उसने अपने घुटनों को छाती से जकड़ लिया है, और ऊपरवाली बीच की पोली जगह में उसने अपना मुँह फँसा लिया है। मुझे उसका मुँह नहीं दीखता, सिर्फ उसका सिर और बाल दिखते हैं। वह न मालूम कब से वैसा बैठा है। और ठिठुरा-ठिठुरा (गठरियों के बीच) वह खुद गठरी बन कर लुप्त-सा हो गया है।

अगर मैं अपने लड़के को आज रात को सफर कराता तो शायद वह भी इसी तरह बैठता। क्यों बैठता! मैं तो उसका इंतजाम करके भेजता, किसी भी तरह, क्योंकि मेरे कनेक्शंस (संबंध) अच्छे हैं। इस बेचारे गरीब देहाती के लड़के के संबंध क्या हो सकते हैं।

मैं उस लड़के को पुन: एकाग्रचित से देखने लगता हूँ। उसका मुँह अभी तक घुटनों के बीच फँसा है। अपने अस्तित्व का नगण्य और शून्य बना कर वह किसी नि:संग अंधकार में विलीन होना चाह रहा है।

मैं उसके पास जा कर खड़ा हो जाता हूँ, ताकि उसकी हलचल, अगर है, तो दिखाई दे। लेकिन नहीं, उसने तो अपने और मेरे बीच एक फासला मुख्य कर लिया है। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि मैं उसे उठा सकता हूँ, मैं उसे कुछ-न-कुछ दे सकता हूँ। मैं उसे भी डबलरोटी का एक टुकड़ा और एक कप चाय दे कर उसके भीतर गरमी पैदा कर सकता हूँ।

मैं उसके पास खड़ा हूँ। और एक क्षण में नवीन कार्य-श्रृंखला गतिमान कर सकता हूँ। काम तो यांत्रिक रूप से चलते हैं। एक के बाद एक ।

लेकिन मैं वहाँ से हट जाता हूँ। फिर बेंच के किनारे पर बैठ जाता हूँ और फिर प्लेटफॉर्म की सूनी बत्तियों को देखने लगता हूँ। मेरा मन एकाएक स्तब्ध हो जाता है।

मेरे बिस्तर पर सोनेवाला बालक ठीक समय पर अपने-आप ही जाग उठा। तुरंत मोजे पहने, चमड़े का कीमती जूता पहना, बंद बाँधे। अपने टेरीलीन के बुश्शर्ट को ठीक किया। नेकर की जेब में से कंघी निकाल कर बालों को सँवारा।

और बिस्तर से बाहर आ कर खड़ा हो गया, चुस्त और मुस्तैद। और फिर अपनी उसी कमजोर पतली आवाज में कहा, 'टिकिट-घर खुल गया होगा।'

मैंने पूछा, 'टिकिट के लिए पैसे हैं, या दूँ?'

'नहीं, नहीं, वह सब मेरे पास हैं।' यह उसने इस तरह कहा जैसे वह अपनी देखभाल अच्छी तरह कर सकता हो।

वह चला गया। मुझे लगा कि टेरीलीन के बुश्शर्टवाले इस बालक को दूसरों की सहायता का अच्छा अनुभव है। और वह स्वयं एक सीमा तक छल और निश्छलता का विवेक कर सकता है।

मेरा बिस्तर खाली हो गया और अब मैं चाहूँ तो बेंच के दूसरे छोर पर घुटनों में मुँह ढाँपे इस दूसरे बालक को आराम की सुविधा दे सकता हूँ।

और मैं अपने मन मे नि:संग अंधकार में कहता जाता हूँ, 'उठो, उठो, उस बालक को बिस्तर दो।'

लेकिन मैं जड़ हो गया हूँ। और मेरे अँधेरे के भीतर एक नाराज और सख्त आवाज सुनाई देती है, 'मेरा बिस्तर क्या इसलिए है कि वह सार्वजनिक संपत्ति बने। शी:। ऐसे न मालूम कितने ही बालक हैं जो सड़कों पर घूमते रहते हैं।'

मैं बेंच के किनारे पर से उठ पड़ता हूँ और टी-स्टॉल पर जा कर एक कप चाय पीता हूँ। सर्दी मेरे बदन में कुछ कम होती है। और फिर मैं अपने सामान की तरफ रवाना होता हूँ।

सीमेंट की ठंडी बेंच के किनारे पर घुटनों में मुँह ढाँपे हुए उस बालक की आकृति मुझे दूर ही से दिखाई देती है। क्या वह सर्दी में ठिठुर कर मर तो नहीं गया।

लेकिन पास पहुँच कर भी मैं उसे हिलाता-डुलाता नहीं, उसे जगाने की कोशिश नहीं करता, न उसके चारों ओर, चुपचाप, अलवान डालने की कोशिश करता। सोचता हूँ करना चाहिए; लेकिन नहीं करता।

आश्चर्य है कि मैं भीतर से इतना जड़ हो गया हूँ, कौन-सी वह भीतरी पकड़ है जो मुझे वैसा करने से रोकती है।

मैं टिकिट खरीदने गए टेरीलीनवाले लड़के की राह देखता हूँ। वह अब तक क्यों नहीं आया?

कि एकाएक यह ख्याल पूरे जोर के साथ कौंध उठता है - अगर मैं ठंड से सिकुड़ते इस लड़के को बिस्तर दूँ तो मेरी (दूसरों की ली हुई ही क्यों न सही) यह कीमती अलवान और यह नरम कंबल, और यह दूधिया चादर खराब हो जाएगी। मैली हो जाएगी। क्योंकि जैसा कि साफ दिखाई देता है यह लड़का अच्छे खासे साफ-सुथरे बढ़िया कपड़े पहने हुए थोड़े है। मुद्दा यह है। हाँ मुद्दा यह है कि वह दूसरे ओर निचले किस्म के, निचले तबके के लोगों की पैदावार है।

मैं अपने भीतर ही नंगा हो जाता हूँ। और अपने नंगेपन को ढाँपने की कोशिश भी नहीं करता।

उस वक्त घड़ी ठीक बारह बजा रही थी और गाड़ी आने में अभी आधा घंटा की देर थी।